शिक्षा और शिक्षक : ज़मीनी चुनौतियों को समझने की ज़रूरत

गौतम पाण्डेय

शिक्षा में सकारात्मक बदलाव की पहली ज़रूरत है ख़ुद की सघन तैयारी। इस तैयारी के दो हिस्से हैं। पहला है शिक्षकों, विद्यार्थियों, अभिभावकों व समुदाय से जुड़ाव बनाना, उन्हें समझना, और दूसरा है अकादमिक तैयारी। शिक्षा से जुड़े तमाम लोगों, चाहे वे शासकीय शिक्षा व्यवस्था के अंग हों या किसी ग़ैर-सरकारी सपोर्ट सिस्टम के हिस्से, सभी के लिए यह तैयारी बेहद ज़रूरी है। यह लेख इसी तैयारी और समझ की स्पष्टता के बारे में है।

शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे अनेक लोग जो शिक्षक तो नहीं हैं, लेकिन विद्यालय जाते हैं, उनका उद्देश्य होता है विद्यालय जाकर शिक्षकों का सहयोग करना। लेकिन इसके लिए उनकी तैयारी क्या है? विद्यालय को उनसे क्या अपेक्षाएँ हैं, और स्वयं उनकी विद्यालय से क्या आशाएँ जुड़ी हैं? ये कुछ बुनियादी और बेहद अहम सवाल हैं। ख़ासकर उन लोगों के लिए जो सरकारी शिक्षा व्यवस्था में काम करने की मंशा से जुड़ते हैं। फिर चाहे वे शासकीय व्यक्ति हों या किसी ग़ैर-सरकारी संस्था से जुड़े हों।

इस क्षेत्र में आने वाले लोगों को दो वर्गों में देखा जा सकता है। पहला समूह शासकीय लोगों का है जिसमें अलग-अलग स्तरों के शिक्षा अधिकारी, बीआरसी, सीआरसी और डाइट से जुड़े लोग होते हैं। दूसरा समूह स्वयंसेवी संस्थाओं के लोगों का है। वे विद्यालयों में जाकर सीखने-सिखाने के प्रयासों में शिक्षकों के साथ खड़े होकर सहयोग करना चाहते हैं। दोनों प्रकार के लोग सरकारी विद्यालयों में शिक्षा की बेहतरी के लिए काम कर रहे हैं। लेकिन सवाल यह है, क्या इनका विद्यालय जाने का उद्देश्य स्पष्ट है? यहाँ मैं दोनों तरह के व्यक्तियों की तैयारी के बारे में कुछ बातें रखूँगा। साथ ही यह भी कि विद्यालयों की इनसे क्या अपेक्षाएँ हैं?

सरकारी विद्यालयों के ज़रिए शिक्षा में सकारात्मक बदलाव के लिए तैयारी के दो हिस्से हैं। पहला है शिक्षकों, विद्यार्थियों, अभिभावकों व समुदाय से जुड़ाव बनाना, उन्हें समझना। उनके आर्थिक, सामाजिक हालात, उनकी संस्कृति, बोली, सब चीज़ों को समझना। इस समझ से वह संवेदना, भाषा और तरीक़ा मिलेगा जिससे इन सभी के साथ आत्मीय संवाद क़ायम किया जा सके। याद रहे, आत्मीय संवाद! न कि अपनी बात कहना या थोपना।

चित्र 1 : विद्यालय के सहयोग के लिए बेहद ज़रूरी है उसकी ज़मीनी हक़ीक़त को क़रीब से समझना

> **विद्यालय में समर्थन के लिए जाने से पहले विद्यालय के बारे में, विद्यार्थियों के बारे में, उनके सीखने के तरीक़ों और परिवेश के बारे में समझ विकसित करना ज़रूरी है।**

दूसरा हिस्सा है अकादमिक तैयारी का। अगर आप वाक़ई इस क्षेत्र में असरदार काम करना चाहते हैं तो पहले यह सीखना होगा कि अपने विषय की विषयवस्तु में ख़ुद कैसे क़ाबिल बनें, और फिर यह सीखना कि इसे दूसरों को कैसे सिखाया जाए।

शिक्षा में बदलाव का पहला क़दम दूसरों को बदलने की कोशिश नहीं, ख़ुद को तैयार करने की प्रक्रिया है। ख़ासतौर पर उन नए साथियों के लिए जो शिक्षा के क्षेत्र में क़दम रख रहे हैं, यह बेहद ज़रूरी है कि वे विद्यालयों की ज़मीनी हक़ीक़त को ख़ुद अनुभव करें।

साथियों को विद्यालयों को भीतर से जानना होगा। ये काम केवल दो-चार दिनों के दौरे या बैठकों से नहीं हो सकता। इसके लिए कम-से-कम तीन प्रकार के विद्यालयों में लम्बी अवधि तक रहकर पढ़ाना होगा। यह अनुभव तभी सार्थक होगा जब आप विविध प्रकार के विद्यालयों में काम करें। एक ऐसा विद्यालय जो अपेक्षाकृत अच्छा माना जाता हो, जैसे– नवोदय, मॉडल या कोई प्रेरक सरकारी विद्यालय, एक औसत प्रदर्शन करने वाला सामान्य राजकीय विद्यालय और एक ऐसा विद्यालय जिसके बारे में आमतौर पर कहा जाता है, "यहाँ तो कुछ नहीं होता!"

असल में, किसी भी विद्यालय को गहराई से समझने में छह महीने से ज़्यादा का समय लग जाता है। मैं यह नहीं कह रहा कि हर व्यक्ति को हर तरह के विद्यालय में छह या सात महीने पढ़ाना ही चाहिए। पढ़ाएँ तो बहुत अच्छा है। अगर इतना समय नहीं दे सकते तब भी कम-से-कम दो से तीन महीने तो ज़रूर किसी एक विद्यालय में शिक्षक के साथ मिलकर लगातार पढ़ाना ही चाहिए।

आप देखेंगे कि कहीं कोई शिक्षक इतना समर्पित होता है कि उसे किसी भी विद्यालय में भेज दो, वह विद्यार्थियों के साथ जुड़ता है, पढ़ाता है, नई चीज़ें आज़माता है। यानी, लगातार सीखने और सिखाने की कोशिश करता है। वहीं दूसरी तरफ़ कोई ऐसा भी मिलेगा जो सालों से वही कर रहा है, कुछ बदलता नहीं, लाख कोशिश कर लो, कोई असर नहीं होता। आख़िर यह फ़र्क़ क्यों है?

इस तरह के फ़र्क़ के पीछे कुछ गहरे कारण होते हैं जिन्हें समझना बहुत ज़रूरी है। उस व्यक्ति का आत्मविश्वास कैसा है? उसकी पारिवारिक-सामाजिक स्थिति क्या है? उसकी सोच और धारणा, ख़ासकर जाति, धर्म, लिंग और समाज के वंचित वर्गों को लेकर, क्या है? उदाहरण के लिए, उसकी महिला सहयोगियों को लेकर सोच कैसी है? अपने ही विद्यालय के ग़रीब, वंचित, दलित विद्यार्थियों के प्रति उसका रवैया कैसा है? क्या वह सचमुच मानता है कि ये विद्यार्थी सीख सकते हैं, आगे बढ़ सकते हैं? या फिर अपने मन में, उन्हें छोटा, कमज़ोर और 'अयोग्य' मानता है, और यह मान्यता उसके व्यवहार, पढ़ाने के ढंग और संवाद में झलकती है। वर्तमान में सरकारी विद्यालयों में वंचित तबक़ों के विद्यार्थी पढ़ते ही हैं। ऐसे में, किसी शिक्षक या सहयोगी की जाति, वर्ग, लिंग और समाज की समझ जितनी गहरी होगी, उसकी भूमिका उतनी ही प्रभावी होगी।

अब विद्यार्थियों की बात करते हैं। एक ही कक्षा में कुछ विद्यार्थी सक्रिय होते हैं, जवाब देते हैं, पढ़ना-लिखना जानते हैं। उसी में कुछ चुप रहते हैं, पीछे बैठे होते हैं, और शायद कुछ भी ठीक से सीख नहीं पाते। फिर भी वे रोज़ विद्यालय आते हैं।

लेकिन कई बार इन विद्यार्थियों को लेकर शिक्षकों या अन्य सहयोगियों के बीच टिप्पणियाँ सुनने को मिलती हैं : "ये तो बस खाना खाने आ जाते हैं"; "ये सीख नहीं सकते"; "ये मन्दबुद्धि हैं"; आदि। कभी-कभी ये बातें विद्यार्थियों के सामने ही कही जाती हैं जो उनके लिए काफ़ी अपमानजनक होती हैं।

असल में, शिक्षा वह जीवन्त प्रक्रिया है जो शिक्षक और विद्यार्थियों के बीच निरन्तर संवाद से जन्म लेती है, चाहे वह कक्षा के भीतर हो या फिर विद्यालय परिसर के किसी कोने में। शिक्षा वही है जो इस आपसी अन्तर्सम्बन्ध में घटती है। अगर हम इस मूल अन्तर्सम्बन्ध को, इस जीवन्त रिश्ते को नहीं समझते, फिर कितनी भी अच्छी योजनाएँ बना लें, वह ज़मीन पर असर नहीं छोड़तीं।

जब हम विद्यार्थी को वास्तव में समझने का प्रयास करें, हमें यह जानना होगा कि उसका मन कक्षा में क्यों नहीं लगता। वह सुबह विद्यालय आया, लेकिन क्या वह खाना खाकर आया है? क्या उसने रात को खाना खाया भी था? शायद रास्ते में कुछ हुआ हो! किसी ने उसे तंग किया हो, डराया हो, मारा हो या अपमानित किया हो। हो सकता है, वह बहुत दूर से पैदल चलकर आया हो। किस हाल में आया है, यह सब हम कितना जानते हैं? एक शिक्षक के तौर पर हमारा दायित्व है कि उसकी परिस्थितियों को गहराई से समझें। इसलिए जब कक्षा में यह देख रहे होते हैं कि कौन-सा बच्चा जवाब दे रहा है और कौन चुप है; कौन ध्यान से सुन रहा है कौन गुमसुम बैठा है; कौन ज़्यादा बोल रहा; और कौन कुछ भी नहीं बोल रहा; ज़रूरी है हम केवल इन बाहरी व्यवहारों को न देखें, बल्कि उनके पीछे छिपे कारणों को भी समझने की कोशिश करें।

हम जैसे लोग, जो बाहर से आकर इस क्षेत्र में काम करना चाहते हैं, भले ही शिक्षक न हों, लेकिन मित्रवत, सहयोगी या ऑन साइट सपोर्ट की भूमिका में आना चाहते हों, उनके लिए कुछ मूलभूत बातें जानना बेहद ज़रूरी हैं :

- अपने विषय को गहराई से जानें, व उसे सरल, सहज, प्रभावी तरीक़े से दूसरों को समझा पाने की क्षमता विकसित करें।
- दूसरों से संवाद स्थापित करने की योग्यता और सामने वाले की बात को धैर्य, समझ व संवेदना से सुनें।

> **शिक्षा में बदलाव का पहला क़दम दूसरों को बदलने की कोशिश नहीं, ख़ुद को तैयार करने की प्रक्रिया है। ख़ासतौर पर उन नए साथियों के लिए जो शिक्षा के क्षेत्र में क़दम रख रहे हैं, यह बेहद ज़रूरी है कि वे विद्यालयों की ज़मीनी हक़ीक़त को ख़ुद अनुभव करें।**

- विद्यालयों के बारे में, तथा विद्यार्थियों, उनके सीखने के तरीक़ों और परिवेश के बारे में समझ विकसित करें। उन्हें पढ़ाएँ, उनके साथ कक्षा में समय बिताएँ। उनकी पृष्ठभूमि समझने का भी प्रयास करें।
- विद्यालय की परिस्थितियों व शिक्षकों को भी जानने-समझने की कोशिश करें। उनकी सामाजिक-पारिवारिक पृष्ठभूमि, सोच, व्यवहार, चुनौतियाँ, और उनके भीतर की सम्भावनाएँ समझना भी बहुत ज़रूरी है।

अगर आप यह सब कर लेते हैं तो यह तय कर पाएँगे कि "मैं विद्यालय जा रहा हूँ तो वहाँ क्या करने जा रहा हूँ?" यह सवाल तब उठेगा जब आपके भीतर एक गहरी समझ और तैयारी होगी।

शिक्षा व्यवस्था में सहयोग करने वाले व्यक्ति को यह समझना चाहिए कि विद्यालय में जिन पाठ्यपुस्तकों को पढ़ाने के लिए सहयोग करना है, उनकी विषयवस्तु को क्यों और किस उद्देश्य से चुना गया है। यह उद्देश्य आमतौर पर किताब के शुरुआती पन्नों में साफ़-साफ़ लिखे होते हैं। अगर वहाँ न मिलें तो सम्बन्धित पाठ्यक्रम दस्तावेज़ों में ज़रूर होते हैं। यह दस्तावेज़ मुख्यत: शिक्षकों के लिए होते हैं, लेकिन उनकी मदद करने वाले को भी इन्हें पढ़ना बहुत ज़रूरी है।

अकसर देखा गया है कि शिक्षक केवल पाठ्यपुस्तक के पाठों को ही पढ़ते हैं जो विद्यार्थियों को पढ़ाने होते हैं। लेकिन लगभग हर किताब की शुरुआत में जो 'प्राक्कथन' होता है, वह शिक्षकों के लिए लिखा गया होता है। आजकल तो यह स्पष्ट रूप से 'शिक्षकों के लिए' शीर्षक से प्रकाशित भी होता है, लेकिन आमतौर पर अनदेखा रह जाता है। अगर शिक्षक इसे पढ़ें, वे समझेंगे कि किताब में कौन-से पाठ क्यों रखे गए हैं, उनकी संरचना क्या सोचकर की गई है, और इनसे विद्यार्थियों में कौन-सी क्षमताएँ विकसित करनी हैं। विद्यालय जाने पर इस बारे में शिक्षकों से अनौपचारिक चर्चा की जा सकती है ताकि तमाम व्यस्तताओं के चलते किताबों को समझने की जो ज़रूरी कड़ी उनसे छूट गई थी, उसे वे पकड़ सकें। लेकिन यह तब होगा जब विद्यालय जाने वाले लोगों को इसकी समझ होगी।

अब बात आती है पढ़ाने के तरीक़ों की। किसी पाठ को पढ़ाने के कई तरीक़े हो सकते हैं। जो शिक्षा विशेषज्ञ होते हैं, वे कुछ सिद्धान्तों के आधार पर कुछ कारगर तरीक़े सुझा सकते हैं। लेकिन यह बिल्कुल ज़रूरी नहीं कि वही तरीक़े हर सन्दर्भ में काम करें। हर किसी के पास अपने अनुभव होते हैं, समझ होती है। वे अपने सन्दर्भ में ख़ुद तरीक़े विकसित कर सकते हैं। विद्यार्थियों के परिवेश, उनके सीखने के तरीक़ों और विषय की समझ अपने तरीक़े विकसित करने में मदद कर सकती है।

अब बात उन शिक्षकों की जो अकसर सहयोग के लिए विद्यालय आने वाले साथियों से पूछते हैं, "मैं लगातार कोशिश कर रहा हूँ, लेकिन कुछ विद्यार्थी अब भी नहीं सीख पा रहे हैं, क्या करूँ?" ऐसे में जो लोग बाहर से आते हैं—जैसे हम लोग—उनसे भी मदद माँगते हैं, "सर, कोई और तरीक़ा बताइए।"

यह महत्त्वपूर्ण है कि जो लोग बाहर से आते हैं, वे शिक्षक की चुनौतियों या समस्याओं का फ़ौरी हल देने की जल्दबाज़ी न करें। पहले चुनौतियों को ठीक से समझें, उस विद्यालय के विद्यार्थियों और समाज के सन्दर्भों में शिक्षक के साथ मिलकर हल निकालने का प्रयास करें। ये एक बेहतर, स्थाई और शिक्षक का ख़ुद का निकाला हुआ रास्ता होगा, और अधिक स्वीकार्य होगा।

लेकिन ऐसा करने के लिए मदद करने वाले को भी कुछ अनुभव-आधारित तरीक़ों की जानकारी होनी चाहिए। यदि उनके पास ख़ुद के काम के अनुभव हों, वह सबसे असरदार होते हैं। जैसे— अगर कोई यह कहे, "सर, मैं जब गाँव में काम कर रहा था, वहाँ भी यही समस्या आई थी। वहाँ तो कोई भी बच्चा नहीं सीख पाया—न मेरे पहले तरीक़े से, न दूसरे से। तब मैंने तीसरा, चौथा तरीक़ा आज़माया, उससे उन्हें समझ में आया।" जब इस तरह का अनुभव साझा किया जाता है, उसमें एक ख़ास वज़न होता है। अनुभव की सच्चाई और व्यावहारिकता शिक्षक को प्रभावित करती है। उन्हें दो-चार और आइडिया मिलते हैं, और वे सोचते हैं, "चलो, इन तरीक़ों को भी आज़माकर देखते हैं।"

चित्र 2 : शिक्षकों के साथ मिलकर सिखाने के नए-नए तरीक़ों को तलाशना भी उनका सहयोग है

शिक्षक भी लगभग उसी परिवेश से आते हैं जिससे हम आप हैं। कई बार कुछ बहुत ज़रूरी बातें पीछे छूट जाती हैं। एक सजग मददकर्ता के रोल में हम आप उन बातों की याद दिहानी कर सकते हैं। "मुझे सिखाना है और मैं सिखाऊँगा।" अगर शिक्षक यह दृढ़ निश्चय कर ले, वह दूसरों की मदद से मज़बूत बन सकता है।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह समझना है कि पढ़ाने के तरीक़े बनते कैसे हैं। क्या कोई व्यक्ति किसी विषय की सतही समझ के साथ उस विषय को कई तरीक़ों से पढ़ा सकता है? यह सम्भव नहीं है। जब आप अपने विषय को बहुत अच्छे से समझते हैं, और यह भी कि उस विषय की किसी ख़ास विषयवस्तु को उस पुस्तक में क्यूँ शामिल किया गया है, और उससे अपेक्षाएँ क्या हैं, तब ही उसे कई तरीक़ों से पढ़ाने में सफल होंगे। इसीलिए शिक्षक हों या शिक्षकों की सहायता करने वाले, उनको अपने विषय की समुचित समझ होनी ज़रूरी है। ख़ुद के लिए सीखना कभी ख़त्म नहीं होता है। शिक्षकों और उनके मददगार को लगातार अपने विषयों के बारे में पढ़ते रहना चाहिए। नई जानकारियाँ जो उस ख़ास विषय में आ रही हैं, उनसे वाक़िफ़ हुए बग़ैर न तो उस विषयवस्तु के साथ न्याय किया जा सकता है न ही पढ़ाने / सिखाने के नए तरीक़े ईज़ाद किए जा सकते हैं।

अब बात करते हैं उन शासकीय व्यक्तियों की जो लम्बे समय से विद्यालयी शिक्षा में कार्यरत हैं, और अपनी सहयोगी भूमिका से ज़िले से विद्यालय स्तर तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए काम करते हैं। इनका काम मुख्यतः प्रशासनिक होता है, और इसीलिए इन्हें शिक्षण की प्रत्यक्ष भूमिका से अकसर अलग समझा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, क्लस्टर रिसोर्स कोऑर्डिनेटर (सीआरसी) या जनशिक्षक का काम विद्यार्थियों को पढ़ाना नहीं, बल्कि रिसोर्स कोऑर्डिनेटरों व शिक्षकों के लिए बैठकों का आयोजन कर उन्हें अकादमिक समर्थन देना, विद्यालयों से डाटा एकत्र करना और उसे ब्लॉक रिसोर्स सेंटर (बीआरसी) या ज़िला स्तर तक भेजना होता है। कई बार यह भूमिका प्रशासनिक स्तर पर ही सिमटकर रह जाती है, अकादमिक मदद का काम अधूरा रह जाता है।

एक और ज़रूरी बात समझनी होगी। फ़ंक्शनरी (या शैक्षिक सहयोगी) का काम विषय पढ़ाना नहीं होता। जैसे– सीआरसी का मतलब यह नहीं कि वह ख़ुद कक्षा में जाकर विषय पढ़ाए। उसकी भूमिका शैक्षिक संवाद को संगठित करने, शिक्षकों के लिए एक सहयोगी माहौल बनाने और सामूहिक सोच को बढ़ावा देने की होती है। चूँकि वह स्वयं भी एक शिक्षक रहा होता है, वह पढ़ा सकता है, लेकिन उसका मुख्य काम 'सीखने-सिखाने' के लिए मंच तैयार करना, और संवाद को सम्भव बनाना होता है।

विद्यालय और शिक्षक के प्रति सकारात्मक सोच सभी के लिए बहुत ज़रूरी है। यदि कोई अधिकारी केवल एक घण्टे के लिए भी किसी विद्यालय में ठहरे, वह बहुत कुछ सकारात्मक देख सकता है। जैसे– विद्यालय की स्वच्छता, विद्यार्थियों की यूनिफ़ॉर्म, मिड-डे मील की गुणवत्ता, विद्यालय प्रांगण में विद्यार्थियों द्वारा तैयार किया गया सुन्दर किचन गार्डन, आदि।

सरकारी विद्यालयों में नियुक्त शिक्षक प्रायः दूरदराज़ के गाँवों में कार्यरत होते हैं। उनकी भी एक पारिवारिक ज़िन्दगी होती है, चुनौतियाँ होती हैं, लेकिन उनकी ज़िन्दगी न कोई देखता है न ही पूछता है। ऐसे में, यदि कोई अधिकारी बस इतना कह दे, "आप अच्छा काम कर रहे हैं। विद्यार्थियों की परिस्थितियाँ कठिन हैं, लेकिन आप ईमानदारी से प्रयासरत हैं"; यह एक साधारण वाक्य शिक्षक के लिए सबसे बड़ी प्रेरणा बन सकता है।

ज़रूरत इस बात की है कि अधिकारी अपने दौरे के दौरान विद्यालयों की परिस्थितियों को समझें। मसलन, वह कहाँ स्थित है; किन परिवारों के विद्यार्थी वहाँ आते हैं; उन परिवारों की परिस्थितियाँ कैसी हैं; आदि। साथ ही, वे शिक्षकों व उनकी पारिवारिक स्थितियों को समझने का प्रयास करें। कई बार वे अपने गाँव / शहर से काफ़ी दूरदराज़ के इलाक़ों में रहते हैं, उन्हें वहाँ रहने की जगह भी नहीं मिलती, और स्थानीय भाषा भी नहीं जानते। ऐसे में उनके लिए वहाँ काम करना काफ़ी चुनौतीपूर्ण होता है। ख़ासकर महिला शिक्षकों के लिए तो समस्याएँ कई गुना ज़्यादा होती हैं जो कि साफ़ टॉयलेट की उपलब्धता से लेकर व्यक्तिगत सुरक्षा तक की होती हैं। अगर अधिकारियों के लिए इन समस्याओं के सन्दर्भ में कुछ करना सम्भव नहीं है तो कम-से-कम इन शिक्षकों की वहाँ बने रहने के लिए हौसला-अफ़ज़ाई तो कर ही सकते हैं यदि वो समझते हैं कि शिक्षक उनके विभाग का सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। शिक्षा विभाग का मुख्य काम शिक्षा उपलब्ध कराना है, और ये काम शिक्षक ही करते हैं। शिक्षक ही तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद विभाग के सबसे प्रमुख काम में लगा है तो उसकी सराहना करनी ही चाहिए। अगर अधिकारीगण शिक्षकों के काम की सराहना करें, उनकी समस्याओं को समझें, सहानुभूति दिखाएँ तो बहुत कुछ बदलाव हो सकता है। यदि आलोचना करें, वह रचनात्मक, विनम्र और समाधानोन्मुखी हो। केवल आलोचना नहीं, सहयोग की भावना ही शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन ला सकती है।

(यह लेख गौतम पाण्डेय से सिद्धार्थ कुमार जैन द्वारा की गई बातचीत पर आधारित है।)

गौतम पाण्डेय पिछले 25 वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। वे कई राज्यों में विद्यालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तक निर्माण का हिस्सा रहे हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, भोपाल में नेतृत्वकारी भूमिका निभा रहे हैं।

सम्पर्क : gautam@azimpremjifoundation.org